मिर्ज़ा ग़ालिब

नन्हा नौशा

स्कूल आते-जाते वक्त कही सड़क पर या अपने ही मोहल्ले मे तुमने वह तमाशा तो देखा ही होगा जिसके मौखे मे मुह डालकर तुम कलकत्ता, वम्वई और करांची के वन्दरगाह, आठ मन की धोवन, राजा की मालिन और ताजमहल देखा करते हो ?

तुम्हे यह भी मालूम होगा कि इस मौखे में जा शीशा लगा होता है यह उसी का जादू है !

लेकिन हमारे-तुम्हारे पास एक और भी शीशा है जिसे हम अपनी आखो से लगा ले तो सिर्फ आजकल की ही नही, वल्कि सैकडो वरस पुरानी वातें भी हमें दिखाई देने लगेगी ।

कौन-सा शीशा है यह ?

यह शीशा है इतिहास का ।

आओ हम-तुम इसी शीशे से झांककर देखे । आगरे की तरफ ध्यान रखना ।

वह देखो ताजमहल की मीनारे दिखाई दे रही है

और वह किले का कुछ-कुछ हिस्सा भी। देखा न ?

हां, ठीक है।

अच्छा चलो, जमुना से लगी-लगी जो रेतीली सड़क है उस पर चलते हुए हम लोग शहर की तरफ बढे। लो, कटरा कश्मीरनवाला और कटरा गुदड़ियोवाला से होते हुए हम लोग सलीम शाह के तकिये के पास पहुच गये।

ओ हो ! क्या बहार है ! शुरू गर्मी का जमाना है। लोगों ने छतों पर जमाव कर रखा है। साफ-सुथरे बिस्तरे, पानी छिड़की हुई गचे, कच्ची मिट्टी की सुराहियो पर कागजी आबखोरे, भीनी-भीनी खुशबूवाले फूल ! आसमान पर नजर डालो तो जैसे रंगीन फूलो का कालीन बिछा हो।

यह पतगो का मौसम है न !

गठियावाली हवेली के पास वह जो दूसरी लाल पत्थर की हवेली बनी है, इन्ही दोनो के बीच एक और हवेली नजर आती है, बडी शानदार और खूबसूरत ! उसकी छत पर...हां-हा, तुमने ठीक देखा। एक लडका पतग उड़ाता दिखाई देता है। होगा कोई सात-आठ साल का। खूब गोरा रग, उम्र के हिसाब से कद जरा लम्बा, चौड़ी हड्डियां, तीखा नाक-नक्शा, शरबती आंखे, उलझे-उलझे बाल !

लड़का सूरत से तुर्क लगता है। इसके पुरखे भी जरूर तुर्क रहे होंगे।

"नौशा! ऐ मियां नौशा!" नीचे से किसी औरत के पुकारने की आवाज आती है। लड़का फुर्ती से पतंग की डोर लपेटना शुरू कर देता है और धीरे-धीरे गुनगुनाता जाता है।

तो क्या इस लड़के का नाम नौशा है?

हां, प्यार से सब इसे नौशा कहते हैं। फारसी में दूल्हा को नौशा कहते हैं।

लेकिन इस बच्चे का नाम नौशा क्यों पड़ा?

बात यह है कि इस लड़के के बाप का नाम मिर्जा अब्दुल्ला बेग था और सब उनको प्यार से दूल्हा मियां कहते थे। इस लडके का असली नाम असद उल्लाह बेग है और सब इसको प्यार से "नौशा मिया" कहते हैं।

क्या कहा? यह नाम सुना हुआ-सा लगता है?

हा, यह नाम सुना हुआ है और इससे भी ज्यादा सुना हुआ एक और नाम है—"गालिब!" यही है वह बच्चा जो बड़ा होकर मिर्जा असद उल्लाह खां गालिब बना—उर्दू का महान शायर जिसकी फिल्म मिर्जा गालिब तुमने देखी होगी, जिसके नाम के टिकट

तुमने लिफाफे पर लगाकर लिफाफा डाक में डाला होगा।

लोग कहते हैं, और ठीक ही कहते हैं, कि मुसलमानों ने भारत को दो ऐसी चीजें दीं जिनकी खूबसूरती अमर है: एक, ताजमहल और एक 'दीवान-ए-गालिब।'

आगरा भी कैसा खुशनसीब शहर है जहां ताजमहल जैसी इमारत बनी और मिर्जा गालिब जैसा शायर पैदा हुआ!

बचपन

गालिव का जन्म आगरे मै २७ दिसम्बर, १७९७ को हुआ।

मिर्जा गालिव के खानदान के लोग सलजूकी तुर्क थे। गालिव के बाबा कौकान वेग अपने पिता से नाराज होकर मोहम्मद शाह रंगीले के जमाने मे समरकन्द से भारत चले आये। ये लोग तुर्की जवान बोलते थे और फौज मे काम करना इनका पेशा था।

खुद मिर्जा गालिव ने अपने और अपने पूर्वजों के बारे मे एक जगह लिखा है

> "असद-उल्लाह खा उर्फ मिर्जा नौशा, 'गालिव' तखल्लुस, कौम का तुर्क सलजूकी सुलतान...की औलाद मे से, उसका दादा कौकान वेग खा, शाह आलम के अहद (शासन काल) मे समरकद से दिल्ली आया...असद उल्लाह खां अकबराबाद (अब आगरा) मे पैदा हुआ। अबदुल्ला वेग खां अलवर मै राव राजा वखतावर

सिह का नौकर हुआ और वहा एक लड़ाई मे वडी वहादुरी से मारा गया ।..."

मिर्जा गालिब के हाथ की लिखावट

इसके वाद यह हुआ कि १८०२ मे अलवर की रियासत मे किसी जमीदार ने वगावत की । मिर्जा

गालिब के पिता इस बगावत को रोकने के लिए फौज लेकर गये और लडाई मे मारे गये।

मिर्जा के सिर से पिता का साया उठ गया। लेकिन मिर्जा की मां बहुत समझदार और पढी-लिखी औरत थी। उन्होने मिर्जा को पढ़ाने-लिखाने का पूरी होशियारी से इन्तजाम किया।

सबसे पहले 'बिसमिल्लाह' हुई।

अगर तुमको यह न मालूम हो कि बिस्मिल्लाह किसे कहते हैं तो अपने किसी मुसलमान दोस्त के छोटे भाई या बहन की बिस्मिल्लाह मे जाकर देखना। उस दिन बच्चा पहली बार पढ़ना शुरू करता है। बच्चे को अच्छे-अच्छ कपड़े पहनाये जाते है, घर के दोस्त-रिश्तेदार जमा होते है, सब उसको रुपये देते है, मजे-दार मिठाइयां मगवाई जाती है, चादी की एक तख्ती और चादी का एक कलम मंगवाया जाता है, एक प्याले मे केसर घोली जाती है।

फिर ?

फिर अच्छी घडी देखकर मौलवी साहब बच्चे के हाथ मे कलम देते है और उसका हाथ पकडकर केसर की प्याली मे कलम डुबोकर लिखवाते है 'बिस्मिल्लाह और...

और क्या ?

और यह कि बच्चे के मुह में मिठाई दी जाती है। सब लोग मिठाई खाते और बाटते है। गाना-बजाना होता है।

बिस्मिल्लाह का मतलब है "अल्लाह के नाम से शुरू।"

तो उस दिन नन्हे मिर्जा गालिब ने भी अच्छे-अच्छे कपड़े पहने होगे और मौलवी साहब ने उनका हाथ पकडकर तख्ती पर लिखवाया होगा: 'बिस्मिल्लाह'।

जितने लोग वहां जमा थे उनमे से भला किसको मालूम था कि तख्ती पर टेढ़ा-मेढा 'बिस्मिल्लाह' लिखनेवाला यह नन्हा हाथ एक दिन ऐसे-ऐसे शेर लिखेगा कि दुनिया की सारी जबानों में उसका अनुवाद होगा और लोग उसकी शायराना बड़ाई के सामने सर झुकायेगे।

मकतब

मोहल्ले में एक मौलवी साहब थे जिनका नाम था मोहम्मद आजम। मिर्जा नौशा ने इन्ही के मकतब में पढाई शुरू की।

उस जमाने में मकतबों का हाल कैसा था यह जानना चाहो तो बड़े-बूढ़ों से पूछो। वे तुम्हें अच्छी तरह बतायेंगे। सब जगह हाल एक-सा ही था। पढ़ाई के साथ-साथ पिटाई की भी भरमार।

मिर्जा नौशा के उस्ताद अरबी, फारसी और उर्दू के अच्छे जाननेवाले थे लेकिन अपने शागिर्दों पर कड़ी नजर रखने के आदी थे। मिर्जा नौशा पढ़ने-लिखने में बहुत तेज थे लेकिन मकतब की पढ़ाई से उन्हे घबराहट होती थी।

इसकी वजह भी थी। मिर्जा नौशा हर वक्त लफ्जो को आगे-पीछे करके शेर बनाया करते और मौलवी साहब उन्हें घुडकाते-धमकाते रहते थे।

वैसे तो मौलवी साहब अपने शागिर्द की तेजी से

ढूढ़ते, ढूढते, ढूढ़ते, ढूढते फारसी के एक वड़े शायर 'जहूरी' के यहा बिल्कुल वे ही अल्फाज मिल गये ।

अब क्या था !

'जहूरी' का दीवान लिये हुए अपने उस्ताद के पास दौड़े । उस्ताद ने 'जहूरी' की गजल देखी, गालिब की गजल देखी और नन्हे गालिब को गले से लगा लिया । कहावत है : "होनहार बिरवान के होत चीकने पात !" आज उनके उस्ताद को पहली वार खयाल आया कि जिस वच्चे को वह पढ़ा रहे हैं वह मुमकिन है आगे चलकर कोई वड़ा शायर वने ! इतना सा वच्चा और इतनी लगन, इतनी मेहनत, इतनी तलाश ।

हमने भी तुम्हे यह वात इसीलिए वतायी है कि मिर्जा जो मकतव की पढ़ाई से घवराते थे तो इससे तुम यह न समझ वैठना कि वह पढ़ने या मेहनत करने से घवराते थे । नही, अलवत्ता वह यह चाहते थे कि जो कुछ पढे अपनी पसद से पढ़े । और अपनी पसद की पढ़ाई मे वह वहुत मेहनत करते थे । इसलिए उनके इल्म मे कुछ कमी नही आयी ।

वचपन के दिनो की याद करके मिर्जा गालिव ने आगे चलकर कहा था :

शायरी से लगाव

मिर्जा के जमाने मे एक और बहुत बड़े शायर भी आगरे मे थे। इनका नाम था नजीर।

यह सूफी थे, जगह-जगह घूमते थे, हर तरह के लोगो से मिलते थे। जनता के दिल की बात जनता की ही जबान मे कहते थे। इनकी शायरी बहुत सच्ची, रसीली और मजेदार थी। वह उनकी मशहूर नज्म "सब ठाट पडा रह जायेगा जब लाद चलेगा बजारा" हम लोग बडे चाव से गाया करते है।

गालिब ने लड़कपन मे जरूर नजीर के शेर पढ़े होगे, सुने होगे। इनसे उन्हे बढावा भी मिला होगा। कुछ लोग तो यहा तक कहते है कि गालिब नजीर के शागिर्द थे। लेकिन यह बात ठीक नही है।

तुम्हे मालूम है न कि उर्दू शायरी मे उस्ताद और शागिर्द के क्या मतलब होते है ?

बात यह है कि उस जमाने मे हर नया शायर जब शेर कहने लगता था तो पुराने और बडे उस्तादों

"मैने वाकायदा तौर पर मकतव जाना और पढना-लिखना दस-वारह साल की उम्र से पहले ही छोड़ दिया। मा भी नाराज हुईं, मामू भी खफा हुए, पर मैंने दुवारा मकतव की तरफ मुह नही किया। अव सोचता हूं ऐसा कुछ नुकसान भी नहीं हुआ। भला वह तालीम जारी रहती तो ज्यादा-से-ज्यादा यही तो होता न कि लोग मुझे मौलवी कहने लगते।"

तुम भी मिर्जा के शुरू के दो-एक शेर सुनो और मजा लो।

एक गर्म आह की तो हजारो के घर जले।
रखते है इश्क में यह असर हम जिगर जले।
परवाने का न गम हो तो फिर किसलिए "असद"।
हर रात शमा शाम से ले ता सहर जले।

और

जख्मे दिल तुमने दिखाया है कि जी जाने है।
ऐसे हंसते को रुलाया है कि जी जाने है।

शायरी से लगाव

मिर्जा के जमाने में एक और बहुत बडे शायर भी आगरे में थे। इनका नाम था नजीर।

यह सूफी थे, जगह-जगह घूमते थे, हर तरह के लोगो से मिलते थे। जनता के दिल की बात जनता की ही जबान मे कहते थे। इनकी शायरी बहुत सच्ची, रसीली और मजेदार थी। वह उनकी मशहूर नज्म "सब ठाट पडा रह जायेगा जब लाद चलेगा बंजारा" हम लोग बडे चाव से गाया करते है।

गालिब ने लड़कपन मे जरूर नजीर के शेर पढ़े होगे, सुने होगे। इनसे उन्हे बढ़ावा भी मिला होगा। कुछ लोग तो यहा तक कहते है कि गालिब नजीर के शागिर्द थे। लेकिन यह बात ठीक नही है।

तुम्हे मालूम है न कि उर्दू शायरी में उस्ताद और शागिर्द के क्या मतलब होते है ?

बात यह है कि उस जमाने में हर नया शायर जब शेर कहने लगता था तो पुराने और बडे उस्तादों

में से किसी एक को अपना खास उस्ताद मान लेता था। जो भी शेर वह कहता अपने उस्ताद को दिखाता और उस्ताद के सलाह-मशविरे मे अपनी शायरी मे काट-छाट करता।

एक-एक उस्ताद के बीसियों शागिर्द हुआ करते थे और इन उस्तादो के यहां शागिर्दो के दरबार-से लगे रहा करते थे।

मजे की बात यह है कि उस्ताद लोग तो आपस मे दोस्त हुआ करते, लेकिन उनके शागिर्द आपस में खूब लड़ा करते, खूब नोक-झोक चला करती कि कौन उस्ताद बड़ा है और कौन छोटा।

मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त।

अचम्भे की बात यह है कि मिर्जा गालिब ने इस तरह की शागिर्दी किसी शायर की नहीं की। नजीर की भी नहीं।

उसी जमाने में एक और बड़े शायर थे। उनका नाम था मीर। यह गजल के इतने बड़े उस्ताद थे कि उर्दू जबान मे इन्हे 'गजल का खुदा' कहते हैं। यह भी आगरे के थे, फिर दिल्ली मे बहुत साल रहे, और अखिर परेशानियो से तंग आकर लखनऊ चले गये।

मीर साहब बडे शायर होने के नाते जरा नकचढे भी थे, जल्दी किसी के शेर की तारीफ नही करते थे, और त्यौरी पर बल डाले बिना किसी का कलाम नही देखते थे।

एक बार एक नवाब साहब दिल्ली से लखनऊ गये तो गालिब की एक गजल साथ ले गये।

उस जमाने मे लोग सौगात की तरह एक शहर के शायरो का कलाम दूसरे शहर ले जाया करते थे।

गालिब की उम्र उस वक्त तेरह साल से भी कम थी।

हां, तो उन साहब ने वह गजल मीर साहब को दिखायी।

जानते हो मीर साहब ने क्या कहा ?

> बोले : "अगर इस लड़के को कोई अच्छा उस्ताद मिल गया और उसने इसको सीधे रास्ते पर डाल दिया तो लाजवाब शायर बनेगा, वरना मोहमल (वाहियात) बकेगा।"

जरा सोचो तो ! तेरह साल का लडका ऐसे शेर कहता था कि लोग एक शहर से दूसरे शहर ले जाया करते थे। फिर इतने बडे उस्ताद का उनके बारे मे

ऐसी राय देना ! यह काफी सबूत था इस बात का कि गालिब आगे चलकर वाकई लाजवाब शायर बनेंगे ।

हमने तुम्हे बताया है कि गालिब ने शायरी मे शागिर्दी किसी की नही की ।

लेकिन उनको पढ़ाने-लिखाने, फारसी जबान को मांजने और शायरी का शौक बढाने में एक आदमी का हाथ जरूर था । यह आदमी था..

कौन ?

मुल्ला अब्दुल समद ईरानी ।

ईरानी लफ्ज मे तुम समझ ही गये होगे कि वह ईरान के रहनेवाले थे । दरअसल, पहले उनका नाम हुरमुज्द था । पहले वह पारसी थे, बाद में मुसलमान हुए और उनका नाम मुल्ला अब्दुल समद पड़ा । वह ईरान के रहने वाले तो थे, लेकिन अरब में रहकर उन्होने अरबी भी अच्छी तरह से सीखी थी । सैर-सपाटे के शौकीन थे । सैर-सपाटा करते हुए हिन्दोस्तान आये और आगरे पहुचे । यही गालिब से उनकी मुलाकात हुई ।

मिर्जा गालिब ने दो साल तक उन्हे अपना मेहमान बनाकर रखा और इल्म के इस दरिया से खूब मोती चुने ।

गालिब की लगन देखकर मुल्ला अब्दुल समद ने उन्हे फारसी के पुराने और नये अदब और जबान (साहित्य और भाषा) की जानकारी कराने मे कोई कसर न उठा रखी। आगे चलकर मिर्जा गालिब ने अपनी किताबो में जहा कही मुल्ला अब्दुल समद का जिक्र किया है बहुत इज्जत के साथ लिखा है।

और उस बुजुर्ग को भी अपने इस नाजवान हिन्दुस्तानी दोस्त से कम प्यार नही था। हिन्दुस्तान से जाने के बाद अपने किसी खत मे उन्होने गालिब को लिखा

> "मेरी तबीयत बडी आजाद है। यहां किसी का गुजर नही। लेकिन मेरे अजीज तुम न जाने कैसे हो कि तुम्हारी याद बार-बार आकर इस आजादी मे रुकावट डालती है।"

कितना प्यारा खत है ! क्या तुम्हारे कोई उस्ताद तुम्हे ऐसा खत लिखे तो तुम बासो न उछल पड़ोगे ?

शादी

अब हम तुम्हे एक बात और बतायेगे और फिर हम-तुम मिर्जा गालिब के साथ आगरे से दिल्ली चलेगे !

वह बात यह है कि शायद सुनकर हंसी आ जाये कि तेरह साल की उम्र में गालिब की शादी हो गयी ।

उन्होने आखीर जमाने में एक दोस्त को खत लिखते हुए लिखा है

> "सात रजब १२२५ (९ अगस्त, १८१०) को मेरे वास्ते हुक्मे-दवामे-हब्से (लम्बी कैद का हुक्म) सादिर हुआ । एक बेडी (यानी बीवी) मेरे पांव मे डाल दी और दिल्ली शहर को कैद-खाना मुकर्रर किया और मुझे उस कैदखाने में डाल दिया ।"

गालिब की बीवी का नाम उमराव बेगम था । छोटे से कद की खूबसूरत बीवी थी और अपने मिया से बहुत मुहब्बत करती थी । गालिब मे और उनमें अक्सर

झगड़े हुआ करते थे और दोनों के बडे मजेदार लतीफे मशहूर हैं।

मसलन एक बार मकान बदलना था। उमराव बेगम एक मकान देखकर आईं। गालिब ने पूछा : "कहिए कैसा मकान है ? पसंद आया ?" वह बोली : "मकान तो अच्छा है पर उसमें कोई बला बताते हैं।"

गालिब ने हसकर कहा : "अच्छा ? भला आपसे भी बढकर कोई बला है ?"

गालिब के रिश्ते के एक पोते खिज्र मिर्जा ने लिखा है '

> "मैं एक दिन मिर्जा साहब के यहां गया। सीढियो से उतर रहे थे। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले 'आ, तेरी दादी के घर चल रहा हूं।' फिर मामा से दादी के बारे में पूछा। पता चला कि नमाज पढ रही है। कहने लगे ' 'है ? यह क्या है भाई ? जब आओ नमाज, जब आओ नमाज। अरे खिज्र, तेरी दादी ने तो घर को फतहपुरी की मसजिद बना डाला है !' "

बात असल यह थी कि गालिब थे कलाकार, आजाद तबियत, घरदारी की उलझनों से घबराने वाले, और उमराव बेगम सीधी-सादी घर-गिरस्त बीवी थी,

इसलिए उनको शौहर की कुछ बातें खल जाया करती थी।

वैसे, दोनों मियां-बीवी दरअसल एक-दूसरे को बहुत चाहते थे और इस चाहत का बडा अजीब सबूत यह है कि गालिब के मरने के ठीक एक साल बाद—उसी दिन जिस दिन गालिब मरे थे—एक तरफ उन की बरसी की तैयारी हो रही थी और दूसरी तरफ उमराव बेगम का भी इन्तिकाल हो गया।

आओ! अब मिर्जा का घरबार आगरे से दिल्ली जाने के लिए बैल-गाडियो मे लद रहा है।

पन्द्रह-सोलह साल के मिर्जा गालिब और बारह-तेरह साल की उनकी दुल्हन उमराव बेगम। दोनो एक रथ में बैठे, हचकोले खाते, मजे-मजे की बातें करते, एक-दूसरे को छेड़ते चले जा रहे हैं। आओ हम लोग भी इसी रथ के पीछे हो ले! ठीक है न।

दिल्ली में

यह सन् १८१२ की दिल्ली है।

जामा मसजिद की सीढियो पर खडे होकर जरा सैर देखो ! क्या हगामा है कि कान पडी आवाज नही सुनाई देती। कही भानमती का तमाशा, कही बाजीगरो के करतब, कही खोचेवालों की आवाजे और इन सब पर छाई हुई चटपटे कबाबों, खुशबूदार फूलो और मजेदार मिठाइयो की महक।

लेकिन हम लोगो को तो चादनी चोक की तरफ मुडना है और वहा से होते हुए बल्लीमारान की तरफ। बल्लीमारान मे जरा दूर जाकर शमसी दवाखाना दिखाई देने लगेगा। कुछ पुरानी-धुरानी इमारतें, छोटी-बडी हवेलिया, और फिर गली कासिम जान।

जब यह गली बाये हाथ को घूमेगी तो भई जरा होशियारी से चलने की जरूरत है। ये दिल्ली की गलिया है, कही और की नही।

लो, वह सामने एक महराब नजर आने लगी।

इसलिए उनको शौहर की कुछ बातें खल जाया करती थीं।

वैसे, दोनों मियां-बीवी दरअसल एक-दूसरे को बहुत चाहते थे और इस चाहत का बड़ा अजीब सबूत यह है कि गालिब के मरने के ठीक एक साल बाद—उसी दिन जिस दिन गालिब मरे थे—एक तरफ उन की बरसी की तैयारी हो रही थी और दूसरी तरफ उमराव बेगम का भी इन्तिकाल हो गया।

आओ! अब मिर्जा का घरबार आगरे से दिल्ली जाने के लिए बैल-गाड़ियों में लद रहा है।

पन्द्रह-सोलह साल के मिर्जा गालिब और बारह-तेरह साल की उनकी दुल्हन उमराव बेगम। दोनों एक रथ में बैठे, हचकोले खाते, मजे-मजे की बातें करते, एक-दूसरे को छेड़ते चले जा रहे हैं। आओ हम लोग भी इसी रथ के पीछे हो लें! ठीक है न।

दिल्ली में

यह सन् १८१२ की दिल्ली है।

जामा मसजिद की सीढियो पर खड़े होकर जरा सैर देखो। क्या हगामा है कि कान पड़ी आवाज नही सुनाई देती। कही भानमती का तमाशा, कही बाजीगरों के करतब, कही खोचेवालों की आवाजे और इन सब पर छाई हुई चटपटे कबाबो, खुशबूदार फूलों और मजेदार मिठाइयो की महक।

लेकिन हम लोगो को तो चादनी चौक की तरफ मुडना है और वहा से होते हुए बल्लीमारान की तरफ। बल्लीमारान मे जरा दूर जाकर शमसी दवाखाना दिखाई देने लगेगा। कुछ पुरानी-धुरानी इमारते, छोटी-बड़ी हवेलिया, और फिर गली कासिम जान।

जब यह गली बाये हाथ को घूमेगी तो भई जरा होशियारी से चलने की जरूरत है। ये दिल्ली की गलिया है, कही और की नही।

लो, वह सामने एक महराब नजर आने लगी।

यह गालिब की सुसराल की हवेली है। जब वह पहली बार दिल्ली मे आकर बसे तो इसी हवेली मे रहे।

लेकिन यह न समझना कि वह हमेशा इसी मे रहे। इसलिए लगे हाथो वह मकान भी देख ले जहा उन्होने अपनी जिन्दगी का बाकी बहुत-सा हिस्सा गुजारा। हा, इसी गली मे चंद कदम और चलो—एक बड़ी-सी ड्योढी मिलती है। इसके अदर एक छोटा-सा आंगन है। पूरब की तरफ एक बड़ा-सा कमरा है और एक कोठरी। बस यह इतना मकान है जिसके बारे मे गालिब ने लिखा है कि यह उनके 'बैठने-उठने, सोने-जागने और जीने-मरने का महल था।'

गली की दूसरी तरफ वह जगह है जहा घर की औरते रहती थी और वह जनानखाना कहलाता था।

इसी मकान मे दिल्ली के सारे शायर जमा हुआ करते थे। दूसरे शहरों से लोग आते तो पूछते-पूछते इस गली का पता लगाते और इस मकान में जरूर आते।

आज भी जो दिल्ली आता है इस मकान के खडहर को देखने जरूर जाता है क्योकि इसी मे गालिब की उस शायरी ने जन्म लिया जिसे बडे-बडे महलो के रहने-वाले अपनी आखों से लगाते है।

तुमने देखा होगा कि पेड़ मे फल लगने से पहले

फूल आते है और फूल आने से लेकर फल पकने तक रोशनी का कितना हाथ होता है। तो बस यही समझ लो कि गालिब की शायरी के फूल तो आगरे मे खिलने शुरू हो गये थे लेकिन दिल्ली की धूप ने उनमें रंग, रूप और मिठास भर दी।

यहां गालिब ने जिन्दगी को देखा और पहचाना, समझा और परखा, नये-नये दोस्त मिले, नये-नये दुश्मन, मुगलिया सल्तनत में इज्जत पायी और उसका पतन देखा। यही उन्होने फाके किये और इश्क भी। यही उनकी शायरी का मजाक भी उड़ा और फिर बच्चे-बच्चे की जुबान पर सुनायी देने लगी। जिन्दगी की इस उथल-पुथल की कड़ी आंच मे तपकर मिर्जा गालिब की शायरी कुन्दन बन गयी। इसीलिए ऐसे शेर कहे :

मुशकिले इतनी पड़ी मुझ पर कि आसां हो गयी।

इशरते कतरा है दरिया मे फना हो जाना।
दर्द का हद से गुजरना है दवा हो जाना।

कैदे हयातो बन्दे गम अस्ल में दोनों एक है।
मौत से पहले आदमी गम से नजात पाये क्यों।

अंधेरी रात और सवेरा

रात के एक बजे है।

दिल्ली की एक अंधेरी गली में से एक पालकी गुजर रही है।

आजकल के जमाने में तो सिर्फ औरतें ही पालकी में बैठती हैं और वह भी कभी-कभी, लेकिन उन्नीसवीं सदी की दिल्ली में शरीफ लोग इसी सवारी पर चला करते थे।

इस वक्त इस में कौन हो सकता है?

देखो, पालकी बल्लीमारान की ओर मुडी और अब गली कासिम जान की तरफ जा रही है। अरे, इसमें तो मिर्जा गालिब हैं!

मगर उनके चेहरे पर दुख की परछाइयां कैसी?

क्यों न हो दुख! दिल में कैसे-कैसे अरमान लेकर मुशायरे में गये थे कि गजल की खूब-खूब दाद मिलेगी, पर वहां कुछ न मिला।

यह बस अपने शेर सुनाते रहे

है बस कि हर इक उनके इशारे में निशा और।
करते है मोहब्बत तो गुजरता है गुमा और॥

महफिल खामोश रही। दो-एक चाहने वाले थे, तारीफ की, लेकिन वह क्या दिल को लगती ? आखिर वहा से उठे और धीरे से बोले

या रब न वो समझे है न समझेगे मेरी बात।
दे और दिल उनको जो न दे मुझको जबां और।

और भरी महफिल छोडकर निकल आये — यह इरादा करके कि अब किसी मुशायरे मे नही जायेगे।

इसीलिए मिर्जा गालिब के चेहरे पर उदासी छाई हुई है।

लो, पालकी आखो से ओझल हो गयी। चलो हम लोग भी लौट चलें।

गालिब ने तो मुशायरो में न जाने का इरादा कर लिया था, लेकिन दोस्त कब पीछा छोड़ने वाले थे ? उन्होंने न सिर्फ रूठे गालिब को मनाया बल्कि उन्हे यह भी समझाया कि सिर्फ लोगों का दिल बदलने की दुआ मागने से काम नही चलेगा, अपनी जुबान भी बदलनी होगी।

गालिब के इन दोस्तों मै फजलुलहक खैराबादी

का नाम जरूर आना चाहिए जिन्होंने न सिर्फ गालिब से दोस्ती का हक निभाया बल्कि हम लोग जो गालिब के पढ़नेवाले है उन पर भी एहसान किया। क्योंकि उन्होने गालिब को समझाया कि ऐसे शेर कहो जो लोगो की समझ मे आये, जिन्हे लोग पसन्द करे नही तो जानते हो क्या होगा ? लोग कहेगे

अगर अपना कहा तुम आप ही समझे तो क्या समझे।
मजा कहने का जब है एक कहे और दूसरा समझे।
जबाने मीर समझे और कलामे मीरजा समझे।
मगर इनका कहा यह आप समझे या खुदा समझे।

सीधा सा मतलब है बात ऐसी कहो जो दूसरो की भी समझ मे आये, वरना लोग मजाक उडायेंगे। वे कहेगे यह आदमी जो बात कहता है उसे या तो खुद समझता है या खुदा समझता है।

बेशक हर शायर दिल का खून बहाकर शेर कहता है, लेकिन कहता है सुननेवाले के ही लिए न ? फिर अगर सुननेवाले के दिल मे बात नही लगी, उस पर असर नही किया, तो शेर कहने से फायदा ही क्या ?

गालिब के दोस्तो की बात थी तो बहुत ठीक ओर सीधी-सादी। लेकिन उस पर अमल करना कितना

कठिन था ! यह तुम्हें अरब के एक वहुत वडे लेखक की इस बात से मालूम हो जायेगा ·

"शायर के लिए अपनी लिखी हुई चीजो को काटना उतना ही मुश्किल है जितना मां के लिए अपने बच्चे के गले पर छुरी फेरना क्योंकि वह अपनी कला से वैसा ही प्यार करता है जैसा कि मां अपने बच्चे से।"

इस वात को समझने के बाद अब तुम गालिब की हिम्मत की दाद दो।

जरा सोचो कि अपने दोस्तो की इस राय की सचाई को मानकर गालिव ने अपने दीवान पर फिर से गौर किया और उसका करीब तीन-चौथाई हिस्सा काटकर फेंक दिया !

कहो, है न हिम्मत की वात ? तुम्हारी कापी का तो अगर एक सफा फट जाये तो तुम्हे कितना अफसोस होगा, लेकिन यहा तो आधे से ज्यादा दीवान काट कर फेंक दिया।

इसके यह मानी हुए कि इन्सान की जो एक बहुत वडी खूवी है, यानी अपनी कमियों और कमजोरियों को मानना और फिर अपने ऊपर दबाव डालकर उसको दूर करना, यह खूवी गालिव मे किसी कदर ज्यादा थी।

तुम अगर गालिव का दीवान देखो तो हैरान रह जाओगे। कहोगे "ओफ! इतनी छोटी-सी किताव!" लेकिन गालिव की नजर जौहरी की नजर थी। उन्होंने सिर्फ हीरे चुने, कंकर सव फेक दिये।

इसीलिए तो यह छोटी-सी किताव दूसरे शायरों के भारी-भरकम दीवानो के मुकावले मे ज्यादा कीमती समझी जाती है।

कहा जाता है कि उस जमाने मे दिल्ली मे कुछ खास लोगों का गुट था। ये लोग तरह-तरह की तरकीवें किया करते थे कि गालिव का कलाम चलने न पाये। लेकिन गालिव की गजले आम लोगो को वेहद पसद थी।

आम लोगों की इस पसंद के वारे मे भी वहुत सी दिलचस्प वाते मशहूर है। लो इनमें से एक सुना दू

कहते है कि चांदनी चौक मे एक तवायफ रहती थी जिसका नाम चौदहवी था। यह वहुत खूवसूरत और सजीली औरत थी और इसे गाना-वजाना खूव आता था। दिल्ली के खास-ओ-आम इसके यहा गाना सुनने आया करते थे।

चौदहवी को मिर्जा गालिव की शायरी वहुत पसद थी और वह आये दिन नई-नई धुने वनाकर उनकी

गजले गाया करती थी। होते-होते मिर्जा गालिब की गजले गली-कूचो मे मशहूर हो गयी।

मिर्जा गालिब को पता चला।

यह वह जमाना था जब गालिब इस बात पर दुखी थे कि उनकी शायरी खास लोगो मे पसंद नही की जा रही। तुम समझ ही सकते हो कि अपनी शायरी की इतनी कदर करनेवाली औरत से मिलने की इच्छा मिर्जा के दिल में जरूर पैदा हुई होगी।

फिर ?

फिर मिर्जा और चौदहवी मे मुहब्बत हो गयी।

अपनी इस मुहब्बत का हाल मिर्जा ने कभी खुल्लमखुल्ला नही बयान किया। बस उनके खतों में कहीं-कही इसका उड़ता-उड़ता सा जिक्र है।

अफसोस की बात यह है कि चौदहवी की मौत जवानी मे ही हो गयी।

मिर्जा के कुछ शेर ऐसे मिलते है जिनके बारे मे सोचा जा सकता है कि ये चौदहवी की मौत पर कहे गये होंगे।

लो, सुनो

क्यों मेरी गमखारगी का तुझको आया था खयाल ?
दुश्मनी अपनी थी मेरी दोस्तदारी हाय हाय।

उम्र भर का तूने पैमाने वफा बांधा तो क्या ?
उम्र को भी तो नहीं है पायदारी हाय हाय !
शर्मे रुसवाई से जा छुपना निकावे खाक में।
खत्म है उलफत की तुझ पर पर्दादारी हाय हाय !

और उनके वे बहुत ही मशहूर और खूबसूरत शेर:

शमा बुझती है तो उसमें से धुआं उठता है।
शोलये इश्क सियहपोश हुआ मेरे बाद।
आये है बेकसी-ए-इश्क प' रोना 'गालिब'।
किसके घर जायेगा सैलावे बला मेरे बाद ?

मिर्जा और चौदहवीं की मोहब्बत की कहानी बड़ी दुख भरी है।

इसीलिए हम सबको चाहिए कि कलाकार के नरम और नाजुक दिल को समाज की ठोकरों से बचायें और उसकी कला की वैसी ही कदर करे जैसी होनी चाहिए।

लखनऊ में मुशायरे

दिल्ली से लखनऊ जानेवाली सडक पर एक घोड़ागाडी जा रही है।

बरसात का मौसम है। फुहार पड़ रही है। चारों तरफ हरियाली छायी है। जोहड-गढ़े पानी से भरे है। आमो की मदमाती बहार है। जिधर देखिये टोकरों में पीले-पीले आम भरे सड़को के किनारे रखे है। आम भी कैसे ? दशहरी, सफेदा—जिनकी मिठास बकौल गालिब के "शहद के मोहरबन्द गिलास" जैसी है।

लेकिन दशहरी और सफेदा तो लखनऊ के आम होते है ?

तो और क्या ! यह लखनऊ तो है ही। इस घोड़ा-गाडी मे मिर्जा गालिब ही तो दिल्ली से लखनऊ पहुंच रहे हैं।

गाजीउद्दीन हैदर का जमाना है। लखनऊ में उर्दू शेर-ओ-शायरी अपनी पूरी जवानी पर है। लोगों को मालूम हुआ कि मिर्जा गालिब आये हैं तो बड़ी आओ-

भगत हुई। जगह-जगह मुशायरे होते हैं। सब अपना-अपना कलाम सुना रहे हैं। शमा मिर्जा गालिब के सामने आती है।

लगे हाथों तुम्हे इस शमा का हाल भी सुना दे।

बात यह है कि उस जमाने में अच्छे मुशायरे बड़ी सज-धज से हुआ करते थे। फर्श पर बड़े-बड़े कालीन। उन पर सफेद दूध की सी चादर। चारों तरफ गाव-तकिये। बीच-बीच में चादी के हुक्के। चांदी के खास-दान जिनमे भीगे हुए लाल रेशम मे पान की प्यारी-प्यारी गिलोरियां वर्क लगी, इलायची पड़ी। चांदी के गुलाबपाशों मे गुलाब जल। ऊपर शामियाना। शामियाने मे फूलों के दरवाजे। चारों तरफ ताकों में रोशनी के लिए कँवल और मोमबत्तियां।

जब शायर जमा हो जाते तो बीच में एक चांदी की लगन लाकर रखी जाती थी। इसमे गुलाब या केवड़े का पानी होता और बीच मे एक बड़ी-सी शमा जमी होती। जिस शायर की पढ़ने की बारी आती, नौकर बडे अदब से इस शमा को उठाकर उसके सामने रख देते।

तो अब शमा मिर्जा गालिब के सामने है।

जरा सुनो क्या कहते .

हजारों ख्वाहिशे ऐसी कि हर ख्वाहिश प' दम निकले।
बहुत निकले मेरे अरमान लेकिन फिर भी कम निकले।
निकलना खुल्द से आदम का सुनते आये थे लेकिन।
बहुत बेआबरू होकर तेरे कूचे से हम निकले।
कहां मैखाने का दरवाजा 'गालिब' और कहां वाइज।
पर इतना जानते है कल वह जाता था कि हम निकले।

लोग है कि सुनते नही थकते। बार-बार फरमाइश होती है और वह बार-बार सुनाते है

मै बुलाता तो हूँ उसको मगर ऐ जजबये दिल।
उस प' बन जाये कुछ ऐसी कि बिन आये न बने।
गैर फिरता है लिये यो तेरे खत को कि अगर,
कोई पूछे कि ये क्या है तो छुपाये न बने।
इश्क पर जोर नही है यह वह आतश गालिब,
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने।

एक नौकर बाहर से आकर खबर देता है कि आगा मीर के यहां से कोई साहब मिर्जा गालिब की खिदमद मे हाजिर हुए है। जिनके यहा मुशायरा है वह ठहरने को कहते है क्योंकि मिर्जा गालिब हाजरीन के इसरार पर तीसरी गजल के कुछ शेर सुना रहे है :
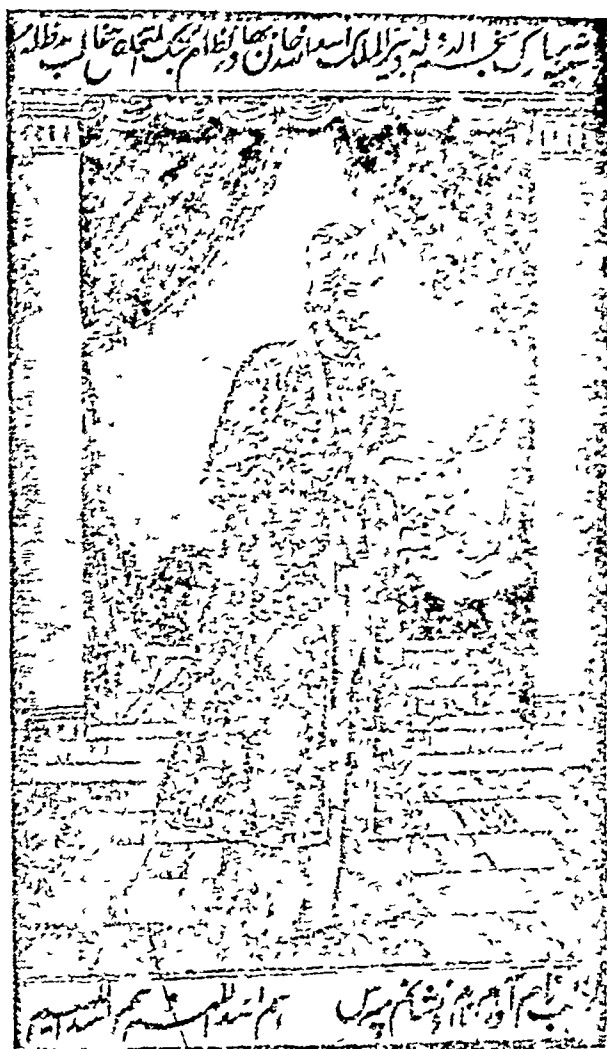
मिर्जा गालिब की वह तस्वीर जो १८६३ मे छपे कुलियात-ए-गालिब मे प्रकाशित हुई थी।

इश्क मुझको नही वहशत ही सही ।
मेरी वहशत तेरी शोहरत ही सही ।
कता कीजे न तअल्लुक हमसे ।
कुछ नही है तो अदावत ही सही ।
हम भी दुशमन तो नही है अपने ।
गैर को तुझ से महब्बत ही सही ।
यार से छेड चली जाये 'असद' ।
गर नही वस्ल तो हसरत ही सही ।

महफिल बरखास्त होती है ।

मिर्जा गालिब शायरो के झुरमुट में से बाहर निकलते है। जो शख्स इन्तजार मे खड़ा था उसने बताया कि आगा मीर ने भेजा है और कहा है कि मिर्जा गालिब से मिलकर हम बहुत खुश होंगे। दरअसल गाजीउद्दीन हैदर तो नाम के बादशाह है, सब कर्ता-धर्ता तो आगा मीर है।

गालिब का जवाब भी जरा देखो !—कहते है .

"मै खुशी से आऊंगा लेकिन दो शर्तो के साथ। पहली तो यह कि मै नकद नजर नही पेश करूंगा और दूसरी यह कि जब मै पहुचूं तो आगा मीर खडे होकर मेरा इस्तिकबाल (स्वागत) करें।"

नतीजा वही जो होना था। न आगा मीर ने गालिब की शर्तें मानी, न गालिब उनके यहां गये।

और यह उस जमाने की बात है जब गालिब को पैसो की बडी तगी थी और शायर लोग दरबारो मे हाजरिया दिया करते थे।

आज न आगा मीर जिन्दा है, न मिर्जा गालिब। लेकिन हम-तुम यह अच्छी तरह जानते हैं कि मिर्जा गालिब जैसे शायर पैसो के आगे नही झुका करते।

कलकत्ते को तरफ

लखनऊ में कई महीने तक रहने के बाद मिर्जा गालिब कलकत्ते गये।

यह सफर भी ज्यादातर घोड़ा-गाड़ी पर तै हुआ, कुछ नाव पर भी।

कलकत्ता पहुंचकर मिर्जा गालिब ने शिमला बाजार मे एक छोटा-सा मकान लिया जो काफी खुला हुआ और हवादार था। आराम का तमाम सामान उसमें मौजूद था। आंगन मे एक कोने मे मीठे पानी का एक कुआ भी था।

वह जमाना था अग्रेजो का। गवर्नर जनरल कलकत्ते मे रहा करता था और उसी के यहां गालिब को काम था।

तो क्या गालिब गवर्नर जनरल से मिलने आये थे ? भला ऐसा क्या काम था ?

बात यह थी कि पहले उनको अपने पुरखों की जागीर से साढे सात सौ रुपये सालाना की पेंशन मिलती

थी। मिर्जा चाहते थे कि यह और बढे। वह यह भी चाहते थे कि पेंशन का रुपया उन्हे सीधे सरकार से मिले क्योंकि जिन नवाबो के जरिए उन्हे यह रुपया मिलता था उनकी खुशामद करना गालिब को पसन्द न था।

कई साल तक यह मुकदमा चलता रहा। मिर्जा ने बहुत-सा रुपया उधार लेकर भी इसमे लगाया कि मिल जायेगा तो अदा कर देंगे। विलायत तक मुकदमा गया, लेकिन आखीर मे वह जीत न सके। उल्टे कर्ज काफी हो गया जो आखीर दम तक चुकाते रहे। और इसी वजह से बहुत परेशानियां उठायी।

वैसे कलकत्ता शहर उनको बहुत पसन्द आया। करीब तीन साल तक वह वहां रहे और उसकी तारीफ अपनी शायरी में भी की है और खतों में भी। लो सुनो, उनके ये तीन शेर कलकत्ते के बारे में ही है :

कलकत्ते का जो जिक्र किया तूने हमनशी !
इक तीर मेरे सीने मे मारा कि हाय हाय !
वह सब्जाजारहाय मुतर्रा कि है गजब !
वह नाजनी बुताने खुद आरा कि हाय हाय !

कुछ समझे ? कहते है कि हाय वह हरी-भरी दूब जिससे दिल को ठंडक और आंखो को तरी पहुंचे

और उस पर टहलती हुई खूबसूरत, नाजुक औरतें बनाव-सिगार दिखाती, दिलो को लुभाती।

और फिर कहते हैं

वह मेवाहाय ताजा औ' शीरी कि वाह-वाह !

वह बादाहाय नाबो गवारा कि हाय हाय !

वे रसीले और ताजे फल और वह मन भावनी लाल-लाल मीठी शराब कि जिसको पी कर दिल बाग-बाग हो जाय।

कहो ! आखो के सामने कलकत्ते की तस्वीर खिच गयी न ?

अपने खतों में भी गालिब ने कई जगह कलकत्ते का जिक्र किया है।

लेकिन कलकत्ते ने गालिब को सिर्फ वही सब नही दिखाया जो तुमने ऊपर पढा है, बल्कि कारोबारी शहर में इन्सान जो कुछ सीखता है वह भी सिखाया। वहां जाकर गालिब के बहुत से लगे-बंधे खयालात बदले और नये खयालातों ने उनकी जगह ले ली। गालिब ने देखा कि इन्सान किस तरह एक नयी जिन्दगी की तरफ बढ़ रहा है। उनको जिन्दगी की खूबसूरती का ज्यादा एहसास हुआ और उसकी मजबूती पर ज्यादा भरोसा।

कलकत्ते से आकर गालिव ने जो शायरी की, उसमें एक नया मोड़ आया।

अब उनकी वात में सादगी और तेजी आ गयी और इसके माने थे कि उनके शेरो में असर वढ़ता चला गया।

अब उन्होंने ऐसे शेर कहने शुरू किये जो समाज की लगी-वंधी पुरानी रीतियो पर और मजहव का प्रचार करने वालो के खोखलेपन पर चोट करते थे।

यह वात तो तुम जानते ही होगे कि हर समाज में कुछ लोग होते है जो अपने-आपको धर्म और मजहव का ठेकेदार समझते है। खुद दुनिया भर की वुराइयां करे तो कुछ नही, लेकिन दूसरो को हर घड़ी नसीहत करते रहते है यह करोगे तो स्वर्ग मे जाओगे, वह करोगे तो नरक में जाओगे, वगैरा, वगैरा। तुम किसी भी अच्छे शायर या कलाकर को देखो—गालिव को लो, तुलसी को देखो, सूर या कवीर को पढो तो तुम पाओगे कि इन सभी लोगो ने उन छोटे लोगो पर चोटें की है जो धर्म के ठेकेदार वनते है।

ऐसा क्यों ?

ऐसा इसलिए कि कलाकार सच्चा आदमी होता है। उसे सवसे ज्यादा नफरत होती है दिखावे से। वह

चाहता है कि आदमी जैसा है वैसा ही नजर आये कि
सब आदमी एक-दूसरे से प्यार-मुहब्बत करें, और [illegible]
खुद भी खुश रहे और दूसरो को भी खुश रखे।
इसीलिए गालिब ने वाइजो पर यह छींटाकशी की है

जिन्दगी अपनी जब इस शक्ल से गुजरी 'गालिब'
हम भी क्या याद करेंगे कि खुदा रखते थे।

और

हमको मालूम है जन्नत की हकीकत लेकिन,
दिल के बहलाने को गालिब यह खयाल अच्छा है।

और

जल्लाद से डरते है, न वाइज से झगडते,
हम समझे हुए है उसे जिस भेस मे जो आये।

यह 'वाइज' वही साहब है जो समझते है कि
स्वर्ग मे सीट बुक कराना उनका ही काम है।

अरबी जबान मे नसीहत करनेवाले को वाइज
कहते है।

मजे की बात यह है कि ये वाइज लोग और उनके
चेले-चपाटे तो ऐसे शेर कहनेवाले शायरों के दुश्मन हो
जाते है, लेकिन जनता उन कलाकारो को हाथों-हाथ

लेती है और उनको अपने दिलों मे जिन्दा रखकर उन्हे अमर वनाती है !

मेहनती और गरीव जनता सचाई की पुजारिन होती है और उसे यह देखते देर नही लगती कि ये नसीहत करनेवाले लोग दूसरो को उल्लू वनाकर अपना उल्लू सीधा करते हैं और तरह-तरह से कलाकारों को परेशान करके उनसे दुश्मनी निकाल लेते है।

मिर्जा गालिव भी एक वार इसी तरह की दुश्मनी के शिकार हुए।

वह कैसे ?

यह हम तुम्हे आगे वतायेंगे।

इस समय तो हम तुम्हे एक किस्सा ऐसा और वताते है जिससे तुम्हे मालूम होगा कि गालिव कितने रख-रखाओ के आदमी थे, और उन्हे अपनी इज्जत कितनी प्यारी थी।

यह तो तुम जान ही चुके हो कि मिर्जा गालिव जव लखनऊ और कलकत्ते गये तो उन्हे पैसों की कितनी जरूरत थी। दिल्ली मे उस जमाने मे एक कालेज था जिसका नाम था दिल्ली कालेज। यह कालेज आज भी मौजूद है। अगर तुम कभी दिल्ली आओ तो इस कालेज को देखना न भूलना।

हां तो, जब मिर्जा कलकत्ते से वापस आये तो इसी दिल्ली कालेज में फारसी पढाने के लिए एक बड़े उस्ताद की जगह खाली हुई। टॉमसन साहब ने, जो उस कालेज के कर्ता-धर्ता थे, गालिब को बुलवाया।

गालिब पालकी पर सवार होकर उनके बंगले पर गये।

अब बगले के दरवाजे पर खड़े है कि कोई लेने आये तो उतरे।

जब किसी ने आकर कहा कि हजरत तशरीफ अन्दर ले चलिए तो बोले—"साहब, कोई उतारनेवाला आये तब तो उतरूं!"

यह बातचीत हो ही रही थी कि टॉमसन साहब खुद निकल आये। बोले:

"आप नौकरी के लिए आये है, मुलाकात के लिए तो आये नही है, इसलिए कोई आपको लेने कैसे आता?"

मिर्जा ने जवाब दिया:

"जनाब, मैने तो समझा था कि इस नौकरी से मेरी इज्जत बढेगी लेकिन यहा तो दिखाई दे रहा है कि जो रही-सही इज्जत थी वह भी हाथ से जायेगी। बस, ऐसी नौकरी को सात सलाम!"

पालकी मे बैठे-बैठे ही कहारो को हुक्म दिया "वापस लौट चलो।"

इस जमाने मे गालिव ने कुछ शेर अपनी गरीबी पर कहे हैं। मसलन :

हमने माना कि रहे दिल्ली मे पर खायेंगे क्या ?

या

गमे इश्क गर न होता, गमे रोजगार होता।

इन शेरों को पढ़कर दिल दुख जाता है और यह खयाल आता है कि काश समाज मे कभी ऐसा बन्दोवस्त हो कि कलाकार अपनी दाल-रोटी की फिक्र से आजाद होकर इतमीनान से शेर कह सके, तसवीरे बना सके, मूर्तियां गढ़ सके, तो कितना अच्छा हो और दुनिया की खूबसूरती कितनी वढ़ जाये !

शमा हर रंग में जलती है

हा, वह मिर्जा से दुश्मनी वाली बात तो रह ही गयी !

हुआ यों कि उस जमाने मे सभी अमीरो-रईसों के यहा चौरस और शतरंज खेली जाती थी। मिर्जा गालिब ने भी बचपन मे ये खेल सीखे थे और कभी-कभी अपने घर पर खेला करते थे। जाहिर है कि ये खेल अकेले तो नही खेले जाते। इसलिए दो-चार दोस्त भी जमा होते थे।

उस जमाने मे दिल्ली मे जो कोतवाल था उसका नाम था फैजुल हसन। यह कुछ 'वाइज' की तरह के आदमी थे। आखिर मिर्जा एक बार उसके हत्थे चढ़ ही गये। फिर क्या था। कोतवाल ने घर को जुए का अड्डा बनाने के जुर्म मे गालिब को गिरफ्तार कर लिया। यह भी कहा जाता है कि मिर्जा उस जमाने में कर्जदार भी काफी थे और उन्हे गिरफ्तार कराने मे किसी महाजन का भी हाथ था।

यहां पर तुम यह भी सोचो कि कलाकार के बारे मे यह खयाल करना बिलकुल गलत है कि उसमे कोई कमजोरी या बुराई होगी ही नही। आखिर वह भी तो हमारी-तुम्हारी तरह एक इन्सान होता है। फिर उसमें किसी तरह की कमजोरी क्यों न आयें ?

सच कहना, क्या हमारा जी नही चाहता कि किसी तरह एकदम से बहुत सा रुपया हमारे पास आ जाये ? चाहता है न ? कभी-कभार हम भी तो सोचते है— लाओ, दस रुपये की लाटरी भेज दे, शायद एक लाख मिल ही जाये !

फिर अगर कोई कलाकार इस तरह सोचता है तो उसको खासकर क्यों बुरा कहा जाय और क्यों यह सोचा जाय कि उसको हरगिज-हरगिज ऐसा नही करना चाहिए था, या यह सोचा जाय कि ऐसा करने से कलाकार होने के नाते जो उसकी बडाई है उस पर धब्बा आ जाता है ?

कोतवाल को यह भी पता था कि गालिब शराब पीते है। जाहिर है, गालिब के वे शेर जो उन्होने नसीहत करनेवालों पर कहे है कोतवाल साहब ने पढे ही होगे। एक तो करेला कड़वा, ऊपर से नीम चढ़ा। उन्होंने गालिब को धर लिया।

जहां तक शराब पीने की बात है, गालिब पीते तो जरूर थे, लेकिन बहुत कम। फिर, वह छिपाकर नहीं पीते थे। वह उन लोगों जैसे नहीं थे जो नेकी और पाकीजगी का ढोल पीटते है, लेकिन होती उस ढोल में पोल है।

मिर्जा को ६ महीने की सजा मिली और २०० रुपये जुर्माना हुए।

उनकी गिरफ्तारी पर शहर में बड़ा हंगामा हुआ, आम लोगों ने मुखालफत की, अखबारों में मजमून लिखे गये, दोस्तों ने सिफारिशे पहुंचायी। मगर कम्बख्त कोतवाल बड़ा पत्थर दिल था और मजिस्ट्रेट उससे भी ज्यादा। उसने सजा टस-से-मस नही होने दी।

अगरचे यह कैद ऐसी थी कि खाना-कपड़ा घर से जाता था, दोस्त, रिस्तेदार मिलने भी जा सकते थे, लेकिन कैद तो फिर कैद थी।

मिर्जा ने कैद में भी शेर कहे। एक-आध तुम भी सुनो :

गर किया नासेह ने हमको कैद, अच्छा यों सही।
यह जुनूने इश्क के अन्दाज छुट जायेंगे क्या ?

और :

कर्ज की पीते थे मै लेकिन समझते थे कि हां,
रंग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन।

आखिर तीन महीने की कैद के वाद दिल्ली के सिविल सर्जन डाक्टर रास की सिफारिश से मिर्जा गालिब की रिहाई हुई। यह कैद उनके लिए एक जवर्दस्त सदमा थी।

जेल से रिहाई के वाद मिर्जा के दोस्तों ने सोचना शुरू कर दिया कि मिर्जा की गुजर-वसर के लिए कुछ-न-कुछ इन्तजाम करना पड़ेगा, वर्ना यह आये दिन इसी तरह का कोई-न-कोई रंग लाते रहेगे।

उन दिनों दिल्ली के वादशाह वहादुर शाह 'जफर' थे। वहादुरशाह खुद भी उर्दू के शायर थे और उस्ताद 'जौक' के शागिर्द थे। वादशाह के एक पीर थे, जो मियां काले साहब के नाम से मशहूर थे और एहसानउल्ला खां नाम के एक शाही हकीम थे जो इतिहास के वड़े विद्वान थे। ये दोनो ही गालिव के दोस्त और कदरदान थे और दोनो की पहुंच शाही खानदान तक थी। सो, दोनों ने मिलकर गालिव को शाही किले में नौकर करवाने की कोशिश की।

चार जुलाई, १८५० का दिन।

गालिब बादशाह के सामने पेश हुए। बादशाह नें उनके सुपुर्द एक खास काम किया। काम यह कि हकीम एहसानउल्ला खा तैमूरी खानदान के हालात बहुत-सी किताबों से जमा करेंगे और उन्हे मिर्जा गालिब फारसी में लिखेंगे।

यह नौकरी तो ठीक थी, किले में लोग गालिब की इज्जत भी बहुत करते थे, लेकिन एक बडी मुसीबत यह थी कि वहां तनखाह हर छ महीने पर बंटती थी। रोजाना के खर्च के लिए उधार लेना पड़ता था। गालिब ने एक दरखास्त नज्म में कहकर बादशाह के यहां भेजी।

इस नज्म में बहुत से शेर है। हम तुम्हे सिर्फ थोड़े से सुनाते है :

मेरी तनखाह में इक-तिहाई का।
हो गया है शरीक साहूकार॥
आप का वन्दा औ' फिरूं नंगा।
आप का नौकर और खाऊं उधार॥
मेरी तनखाह कीजिये माह-व-माह।
तो न हो मुझको जिन्दगी दुश्वार॥

तुम सलामत रहो हजार बरस।
हर बरस के हो दिन पचास हजार॥

क्यों, है न मजेदार शेर ?

कैसे अफसोस की बात है कि गालिब जैसे कलाकार को अपनी रोज की गुजर-बसर के लिए ऐसे शेर भी कहने पड़े थे :

घूप खाये कहां तलक इन्सान।
आग तापे कहां तलक जांदार॥

गदर

दिल्ली और दिल्लीवालों के लिए १८५७ का साल—और उस साल का मई महीना—किस कदर मुसीबतों का वक्त था।

तुमको तो मालूम ही है कि उस जमाने मे गदर हुआ।

पहले हिन्दोस्तानियों ने दिल्ली पर कब्जा किया और बहादुर शाह 'जफर' को बाकायदा बादशाह बना दिया। लेकिन, पांच महीने बाद सितम्बर, १८५७ में दिल्ली पर फिर अंग्रेजों का कब्जा हो गया।

इस उथल-पुथल मे पहले बहुत से अंग्रेज मारे गये। और फिर जब अग्रेज वापस आ गये तब हिन्दोस्तान पर जुल्म की कोई हद न रही। बादशाह कैद करके रगून भेज दिये गये। शाही खानदान और उसकी साथी रियासतों के लोगो को फासिया हुई, गोलियां मारी गयी, और आम जनता मे जो लूटपाट और कत्ले-आम हुआ उसका तो कोई हिसाब ही नही।

मिर्जा गालिव उस वक्त वल्लीमारान मैं रहते थे।

जैसे ही फसाद शुरू हुआ उमराव वेगम ने अपने जेवर और कुछ रुपये काले मियां के यहां भिजवा दिये।

काले मिया तुमको याद है न ?

वही जो वादशाह के पीर थे। रोजा-नमाज के अलावा वह किसी के अच्छे-वुरे मे नही थे।

चूकि वह एक मजहवी आदमी थे, फकीर तवियत, इसलिए उमराव वेगम ने सोचा होगा कि उनसे किसी को क्या दुश्मनी हो सकती है। हमारा सामान उनके यहां रहेगा तो वच जायेगा। लेकिन वह वहा भी लुट गया।

मिर्जा की जो थोड़ी-वहुत पूजी थी वह इस तरह वरवाद हुई।

उनके मुसलमान दोस्तों पर भी सख्त मुसीवतें आई और यह हाल हो गया कि किसी को किसी की खवर न रही।

मुसलमानो पर खासकर अग्रेजो को इसलिए शक रहता था क्योकि वादशाह मुसलमान थे, और शाही खानदान के वहुत से लोग अव भी शहर मे मौजूद थे।

लेकिन मिर्जा गालिव के हिन्दू दोस्तो ने इस जमाने मे उनकी वहुत मदद की।

मेरठ से हरगोपाल उनको बराबर रुपये भेजते थे, मुशी हीरा सिह, पंडित शिव राम और उनके बेटे बाल मुकद, बराबर मदद करते रहे। महेश दास अपने उस्ताद के लिए शराब छिपा-छिपाकर पहुंचवाते रहे।

मिर्जा ने इन लोगो के बारे मे लिखा है ·

> "अगर शहर मे यह चारों साहब मौजूद न होते तो कोई मेरी बेकसी का गवाह भी न होता।"

इसी जमाने मे मिर्जा पर एक सख्त सदमा गुजरा।

उनके भाई, मिर्जा यूसुफ, मुहल्ला फराशखाने में रहते थे। गदर मे उनके बाल-बच्चे जयपुर चले गये और वह अकेले रह गये। एक दिन मालूम हुआ कि गोरे उनके मकान मे घुस गये, फिर कुछ दिन बाद उनका नौकर किसी तरह बचता-बचाता मिर्जा गालिब के यहां पहुचा और उनको इत्तला दी कि यूसुफ मिर्जा का इतकाल हो गया।

महाराजा पटियाला के सिपाही मिर्जा गालिब के मुहल्ले का पहरा दे रहे थे। उन्होने समझाया कि इस वक्त मुहल्ले से निकलना ठीक नही है, शहर की हालत बहुत खराब है। मजबूरन मिर्जा ने एक सिपाही और एक नौकर भेजा। बाजार बद थे। कफन कहां

से मिलता ! मिर्जा ने भाई के कफन के लिए तीन-चार चादरें अपने घर से दी, उसी मुहल्ले की मस्जिद में दो-तीन आदमियो ने मिलकर गढ़ा खोदा और उनको गाड दिया ।

मिर्जा अपने मरने वाले भाई की सूरत भी न देख सके !

जब दिल्ली पर कब्जा हुआ तो एक-एक से पूछ-ताछ हुई ।

इसी पकड़-धकड़ मे मिर्जा भी कर्नल ब्राउन के सामने लाये गये, जो छान-बीन कर रहे थे । मिर्जा के सर पर पापख कुलाह थी, जो सिर्फ मुसलमान पहनते थे ।

कर्नल ब्राउन ने पूछा : "वल ! तुम मुसलमान ?"

और कोई होता तो उसकी सिट्टी-पिट्टी गुम हो जाती । लेकिन देखो, मिर्जा ने अपनी चंचल तबियत की वजह से कैसी बाजी जीती ! कहने लगे

"जी हा—मगर आधा !"

कर्नल ने हैरान होकर पूछा "इसका मतलब ?"

मिर्जा बोले "मैं शराब पीता हूं, सुअर नही खाता !"

कर्नल हसने लगा । फिर मिर्जा ने उसको वजीरे-हिन्द की चिट्ठी दिखायी ।

कर्नल ने कहा : "अंग्रेजी सरकार की जीत के बाद पहाड़ी पर क्यो नही हाजिर हुए ?"

मिर्जा ने जवाब दिया · "मैं चार कहारो का अफसर था, वह चारो मुझे छोड़कर भाग गये ! कैसे आता ?"

यानी मिर्जा पालकी मे चलते थे, जब कहार न रहे तो पालकी क्योकर चलती, और पालकी न चलती तो मिर्जा क्योकर एक जगह से दूसरी जगह पहुंचते ?

मिर्जा ने सोचा था कि ये अंग्रेज शायद उनका वजीफा फिर से जारी कर दे । लेकिन ऐसा नही हुआ और गदर के बाद मिर्जा की हालत और तबाह हो गयी ! पैसे-पैसे को मोहताज हो गये ।

> एक जगह लिखते है "इस गरीबी के जमाने मे जितना कपड़ा—पहनना, ओढ़ना, और बिछावना—घर में था सब बेच-बेचकर खा लिया । गोया और लोग रोटी खाते थे और मै कपडा खाता था ।"

आखिर रामपुर के नवाब यूसुफ अली खा ने सौ रुपये माहवार मुकर्रर किये जो उनको आखीर तक मिलते रहे ।

गदर के तीन साल वाद सरकारी पेंशन भी जारी हो गयी। इस पेंशन के जारी कराने में सर सैयद अहमद खा ने वहुत मदद की।

सर सैयद का नाम तो तुमने सुना ही होगा! वही जिन्होने अलीगढ़ यूनिवर्सिटी कायम की।

गालिव और सर सैयद का एक चुटकुला भी सुनो :

एक वार मिर्जा गालिव रामपुर से वापस आते हुए मुरादावाद ठहरे। सर सैयद वही थे। उनको पता चला तो गालिव को सराय से उठाकर अपने घर ले गये।

गालिव के सामान मे शराव की एक वोतल भी थी। सर सैयद ने जहां उनका सव सामान रखा वहां वोतल नही रखी, वल्कि अन्दर किसी कोठरी में रख दी। गालिव ने सामने वोतल न पायी तो पूछा · "मेरी वोतल क्या हुई ?"

सर सैयद ने इतमीनान दिलाया कि हिफाजत से कोठरी मे रखी है। लेकिन गालिव को इतमीनान नही हुआ। इस पर सर सैयद ने उनको कोठरी मे रखी हुई वोतल दिखायी।

मिर्जा ने वोतल हाथ में ली और घुमा-फिराकर

बोले "इस मे तो कुछ वेइमानी हुई है। सच वताओ किसने पी है ?"

सर सैयद वेचारे रोजा-नमाज करनेवाले और लम्बी-सी दाढ़ी रखनेवाले मुसलमान थे। कानों पर हाथ रखे तोवा-तिल्ला करते जाये। लेकिन गालिव ने उनको खूव छेड़ा। वार-वार कहते "अरे भाई, पी ली तो कोई वात नही, पर वता दो। छिपा नही सकते हो क्योंकि पीने वाले की वोतल मे से एक कतरा भी कम होता है तो उसे पता चल जाता है। आखिर वोतल ही क्यो कोठरी मे रखी ? और कोई सामान क्यो न रख दिया ?"

सर सैयद वेचारे कभी रोआसे होते, कभी हंसते। गरज, वड़ी दिल्लगी रही।

रामपुर से वापिस आते हुए मिर्जा गालिव पर एक अजीव सी मुसीवत और आई थी।

जाडे का जमाना। वारिश के दिन थे। राम गंगा मे वहिया आई हुई थी। नदी पर कश्तियों का एक कमजोर-सा पुल वना हुआ था। मिर्जा गालिव नदी पार कर रहे थे। जैसे ही उनकी पालकी उस पार पहुची, एक जवर्दस्त रेला पानी का आया और पुल को वहा ले गया।

अव नौकर-चाकर, असवाव, उस किनारे पर और हमारे शायर साहव इस किनारे पर—और वीच में नदी ठाठे मार रही है !

वड़ी मुश्किल से एक सराय मे पहुंचे और एक कम्वल ओढ़कर रात गुजर की। सुवह को मौलवी मुहम्मद हसन खां को पता चला। वह मुरादावाद में सदरुल-सुदूर थे—जैसे आज-कल जज होता है। वह अपने यहां ले गये।

नवाव रामपुर का भी एक चुटकुला है। मिर्जा रामपुर से रुखसत हो रहे थे तो उन्होने मिर्जा को रुखसत करते वक्त कहा "आपको खुदा के सिपुर्द किया !"

गालिव ने कहा · "हजरत खुदा ने मुझे आप के सिपुर्द किया है और आप फिर उलटा मुझे खुदा के सिपुर्द कर रहे है !"

यहां तक तो तुमने गालिव की जिन्दगी के कुछ हालात जाने और उनके कुछ शेर पढे।

अव हम तुम्हे वतायेंगे कि गालिव न सिर्फ शेर ला-जवाव कहते थे वल्कि वह गद्य भी ऐसा लिखते थे कि उनको आज हम साफ और सलीस उर्दू गद्य की वुनियाद डालने वाला कहते है।

वह कैसे ?...आगे पढ़ो !

गालिब के खत

तुमको यह मालूम होगा कि उर्दू भाषा कई जबानो को मिलाकर बनो है। इसमें फारसी, अरबी, संस्कृत—तीनों भाषाओ के बहुत से लफ्ज है; और जबानो के लफ्ज भी है, जैसे अंग्रेजी, तुरकी, सिंधी, पुर्तगाली वगैरा के।

यह भी तुमको मालूम होगा कि मुगलों के आखिरी बादशाह तक दरबारी जबान फारसी थी। अगरचे उर्दू बोली और पढ़ी-लिखी जाती थी, लोग बहुत से कारोबारी काम फारसी मे करते थे, खत-पत्तर भी फारसी मे लिखते थे। उर्दू मे कुछ लिखते-लिखाते थे तो उस मे बहुत फारसी मिली होती थी।

मिर्जा गालिब ने इस फारसी मिली हुई उर्दू को आसान उर्दू बनाया। उन्होने अपने खतों में ऐसी जबान लिखी जो बहुत हल्की-फुल्की और प्यारी थी और होते-होते यही जबान लोगो के कलम से निकलने लगी और हर जगह फैल गयी।

इस तरह हम यह कह सकते हैं कि मिर्जा गालिव उर्दू जवान के न सिर्फ एक वहुत वड़े शायर थे, वल्कि यह कि उन्होंने उर्दू गद्य पर भी वहुत वड़ा अहसान किया।

तुम्हे मालूम है कि गालिव के वहुत से दोस्त थे। उत्तरी हिन्दोस्तान मे हर जगह पढ़े-लिखे लोग उनको कलाकार मानते थे और उनका वहुत आदर करते थे। रोजाना डाक से उनके पास वीसियो खत आते थे। शागिर्दों के खतों में गजले भी होती थी जिनको मिर्जा ठीक-ठाक करके भेजते।

उनके खतों को पढ़ो तो तुम्हे वड़ा मजा आये।

ऐसा लगता ही नहीं कि खत हैं। लगता है कि दो आदमी आपस मे वाते कर रहे हैं। खत लिखने का तरीका भी वहुत दिलचस्प और मजेदार होता है।

देखो यह खत उन्होंने अपने एक शागिर्द मीर मेहदी मजरूह को लिखा है। लिखना यह था कि मीरन साहव आये और उनसे ये वाते हुई—तो इसको कैसे लिखते हैं

"ऐ मीरन साहव! आदाव! कहो, आज इजाजत है मीर मेहदी के खत का जवाव लिखने की? हुजूर मै क्या मना करता हूँ, मगर मैं हर

खत मे आपकी तरफ से उसको दुआ लिख देता हूं। नही मीरन साहब उसके खत को आये हुए बहुत दिन हुए, वह खफा होगा। ऐ हजरत, वह आपके शागिर्द है, खफा क्या होगे ? भाई आखिर कुछ तो बताओ कि तुम मुझे खत लिखने से क्यो मना करते हो ! सुभान अल्लाह, लीजिए हजरत, आप खुद तो खत नही लिखते और मुझसे फरमाते है कि तू रोकता है ! अच्छा तुम नही रोकते, फिर यह तो कहो तुम क्यों नही चाहते कि मै उसे खत लिखूं ? क्या अर्ज करूं, बात यह है कि अगर मै वहां होता और आपका खत जाता तो मै भी सुनता और मजा लेता, और अब जो मै वहा नही हूं तो मै नही चाहता कि आपका खत जाये। मै बस दो-एक दिन मे जाता हूं, फिर आप शौक से खत लिखिए। मिया मिट्ठू ! होश की खबर लो, तुम्हारे जाने-न-जाने से मुझे क्या वास्ता ? मै बूढा आदमी, भोला आदमी, तुम्हारी बातों मे आ गया और उसको खत नही लिखा, लाहौल विला कूवत..."

इसके बाद मीर मेहदी से असली बात कहना शुरू करते है।

एक बार किसी ने उनके एक शागिर्द उमराव सिंह की दूसरी वीवी के मरने का हाल लिखा और यह भी लिख दिया कि नन्हे-नन्हे वच्चे है, अव तीसरी शादी न करेगा तो क्या करेगा। देखो जरा कि मिर्जा गालिव उसका कैसा मजेदार जवाव लिखते है ·

> "उमराव सिह के हाल पर उसके वास्ते रहम आया और अपने वास्ते जलन। अल्ला-अल्ला ! एक वह है कि दो-दो वार उनकी वेडियां कट चुकी है और एक हम है कि एक ऊपर पचास वरस से जो फांसी का फदा पड़ा है तो न फदा ही टूटता है, न दम ही निकलता है। उसको समझाओ कि भाई तेरे वच्चो को मै पाल लूगा, तू क्यो वला मे फसता है !"

गालिव के खतों मे और भी कई खास वाते है। उनमे उनकी जिन्दगी के साफ और सच्चे हालात मिलते है, गदर की ऐसी तस्वीरे मिलती है जो शायद इतिहास मे न मिल सके और उनके दोस्तो-शागिर्दो वगैरा का पता चलता है।

अगर तुम्हे गालिव के वारे मे और वाते मालूम करने का शौक हो तो गालिव के खत इकट्ठा करके जो

दो किताबें बनायी गयी है वे जरूर पढो। इनमे एक है ऊदे-हिन्दी (भारत की सुगधि) और दूसरी उर्दू-ए-मोअल्ला (परिष्कृत उर्दू)।

अच्छा अब उनके दो खतों में से दो-चार सतरें और सुना दे फिर गालिब के बारे मे कुछ और बातें।

१८६८ मे रहमत अली फोटोग्राफर द्वारा खींचा गया गालिब का चित्र।

देखो ! यह खत उन्होने अपने एक दोस्त को लिखा है जो रोजा रखते थे। जानते हो न ? मुसलमान रमजान मे व्रत रखते है ? दिन भर कुछ खाते-पीते नही। शाम को सूरज डूबने के बाद खाते है। ये व्रत एक महीने तक चलते रहते है। इन्ही को रोजा कहते है। कुछ भी खाने या पीने, या हुक्का-तम्बाकू पीने, से रोजा टूट जाता है।

जाहिर है, गालिब रोजा तो कभी रखते नही थे। क्या मजे मे लिखते है :

"धूप बहुत तेज है, रोजा रखता हूँ मगर रोजे को बहलाता रहता हूँ। कभी पानी पी लिया, कभी हुक्का पी लिया, कभी कोई टुकडा रोटी का भी खा लिया। लोग अजीब है, मै तो रोजा बहलाता हूँ और वह कहते है कि तू रोजा नही रखता। यह नही समझते कि रोजा रखना और चीज है और रोजा बहलाना और बात है।"

एक खत मे बरसात की मुसीबत लिखते है :

"दीवानखाने का हाल जनानखाने से भी बदतर है, मै मरने से नही डरता लेकिन तकलीफों से घबरा गया हूँ। बादल दो घटे बरसते हैं, तो छत चार घटे बरसती है !"

अपने एक करीबी दोस्त मिर्जा कुरबान अली को लिखा है :

> "यहा खुदा से कोई उम्मीद नही, बन्दों का क्या जिक्र ! कुछ बन नही आती । आप अपना तमाशाई बन गया हूं, यानी मैने अपने को अपना गैर समझ लिया है। जैसे दूर से खडे होकर तमाशा देखता हूँ । जो दुख मुझे पहुचता है, कहता हूँ : लो, गालिब के एक और जूती लगी ! बहुत इतराता था कि मै शायर हू, वड़ा फारसी-दा हूँ, आज दूर-दूर मेरा जवाब नही ! ले, अब कर्जदारों को जवाब दे...कोठी से शराब, गंधी से गुलाब, वजाज से कपडा, मेवाफरोश से आम, सराफ से दाम कर्ज लिये जाता था—यह भी तो सोचा होता कहा से दूगा !"

देखो, वडा इन्सान इस तरह अपनी हकीकतों पर हंसता है। ये वो लोग है जो खुद रोते है और दूसरों को हंसाते है, जिनके पाव सदमे से लहू-लुहान है पर जो दूसरो को सच्चा रास्ता दिखाते और जीवन की खूवसूरती का वरावर यकीन दिलाते है।

देखो मुझे जो....

तुमने वह गाना कभी सुना है · "मैं तो दिल्ली से दुलहन लाया रे, ओ बाबू जी ?"

यह गाना सुनकर हमारे दिल मे सबसे पहले यह खयाल आता है कि दिल्ली की दुलहन की सूरत कैसी होगी। वह कैसे कपड़े पहने होगी ? क्या सिगार किये होगी ? बात क्योकर करती होगी ? अपने-परायों मे छोटे-बड़ो से उसका व्यवहार कैसा होगा ? हसमुख है या नकचढ़ी ? मिलनसार है या अखलखुरी ?

लेकिन यहां तो हम तुम्हे अपने दिल्ली के दूलह की बात सुना रहे थे—मिर्जा असद उल्ला खां गालिब उर्फ नौशा मियां की बात !

तो पहले तुम उनकी सूरत देखो ! लम्बा कद, चौड़ी हड्डियां, दाढी नही रखते थे, अलबत्ता बारीक-बारीक मूछे थी। सर पर लम्बे-लम्बे पट्टे, आखे बडी, रंग गोरा-चिट्टा जिसमे गुलाबी रग छलकता था। हाथ यानी पजा बहुत बडा था।

सुनते है जिन लोगो का पजा बडा होता है उनका दिल भी बडा होता है। यह बात किसी और के लिए ठीक हो या न हो, लेकिन मिर्जा गालिब के लिए बिल्कुल ठीक थी। उन्होने बहुत बडा दिल पाया था। हर एक से बडी मुहब्बत से मिलते थे, दूसरो का दुख देखकर बहुत बेचैन हो जाते थे।

एक बार एक दोस्त उनसे मिलने आये जो गदर से पहले बहुत अमीर थे और हमेशा रेशमी फरगुल पहनते थे (फरगुल एक बड़ा-सा लम्बा लबादा होता था—ड्रेसिग गाउन जैसा)। गदर के बाद यह बहुत गरीब हो गये थे। मिर्जा से मिलने आये तो सूती छीट का फरगुल पहने थे। मिर्जा यह देखकर तडप गये। बात बनाकर बोले .

"यह छीट आपने कहां से ली ? मुझे बहुत पसन्द आयी—मुझको भी मगवा दीजिए।"

उन्होने जवाब दिया . "यह फरगुल आज ही बनकर आया है और मैने अभी पहना है। आप बुरा न माने तो यही ले लीजिए।"

मिर्जा ने उनका फरगुल उतार लिया, फिर इधर-उधर देखकर बोले : "मगर जाडा बहुत है। आप बगैर फरगुल के कैसे घर जायेगे ?"

और यह कहकर उन्होने खूटी से अपना नया रेशमी फरगुल उतारा और अपने दोस्त को पहना दिया।

इस तरह गरीबी के होते भी मिर्जा अपने दोस्तों और रिश्तेदारो से हर वक्त अच्छा सुलूक करते थे।

गर्मियो में मिर्जा गालिब नीचे कुर्ता और ऊपर तनजेब का अंगरखा पहनते थे। सर पर एक पल्ले की हलकी सी चिकन या कोई और चीज, जिस पर नफीस और नाजुक काम बना होता था। एक बट का, यानी अर्ज का, सफेद पाजामा। पाव मे गथेली जूती।

जाड़ो मे फूलदार या किसी और गहरे रग का चोगा और सर पर काली बालदार ऊंची टोपी, या पापख की कुलाह पहनते थे। पान कभी नही खाते थे, लेकिन हुक्के का शौक था।

तुम्हे इतना तो अन्दाजा हो गया होगा कि गालिब लम्बे-चौडे आदमी थे। लेकिन यह सुनकर तुम बहुत ही ताजुब करोगे कि वह खाना बहुत कम खाते थे। रात को खाने की जगह थोड़ी शराब...

लेकिन इस शराब का भी हाल सुनो।

उनका एक दारोगा था—कल्लू खां। उसके पास सामान की कोठरी की कुजी रहती थी और उस कोठरी मे शराब की बोतल रहती थी। कल्लू खा को हुक्म था

कि जितनी हम पीते है अगर उससे ज्यादा मांगे तो कभी न दो !

कल्लू शाम को थोड़ी सी नापकर निकालता और फिर उसे मिट्टी के कुल्हड मे डाल देता। फिर अगर वर्फ होती तो कुल्हड उसमे दबा दिया जाता। पीते वक्त उसमे गुलाव का पानी मिलाते जाते थे।

बस यह शराव, तीन-चार तले हुए कबाब, खट-मिट्ठी चटनी और नमकीन बादाम—यह रात को खाते थे।

दिन को थोडा-सा भुना हुआ गोश्त, एक फुलके का छिलका, एक प्याली गोस्त का ही पानी, एक अडे की जर्दी, जरा सी कोई मीठी चीज! सुवह एक गिलास मिसरी का शरवत जिसमे कुछ वादाम घोटकर मिले होते थे।

आम अलवत्ता वहुत शौक से खाते थे। खुद मग-वाते थे, शहर के कदरदान लाते थे, वाहर दूर-दूर से दोस्त भेजते थे। लेकिन उनका जी न भरता था।

खाना खाने के वाद हाथ वेसन से धोते थे।

एक वार वहादुर शाह 'जफर' के साथ उनके वाग मे टहल रहे थे। आमो का मौसम था। मिर्जा एक-एक पेड़ झांक-झांककर देखते।

बादशाह ने कहा : "मिर्जा, इतने गौर से क्या देखते हो ?"

कहने लगे . "हुजूर, सुनते है हर दाने पर लिखा होता है कि फलां के बेटे और फला के पोते के हिस्से का है। सो, मैं देखता हू कि इन आमो मे मे किसी पर मेरे बाप-दादा का नाम भी लिखा है ?"

बादशाह हंसने लगे और शाम को ही एक टुकडा बहुत उमदा चुने हुए आम मिर्जा को भिजवाये।

एक बार कुछ दोस्त जमा थे और आमों पर बहस हो रही थी कि आम मे क्या-क्या खूबियां होनी चाहिएं।

फजलुल हक खैराबादी ने मिर्जा से कहा ·

"भाई तुम भी अपनी राय बताओ।"

मिर्जा ने जवाब दिया

"भई, मेरे ख्याल मे तो आम मे दो खूबियां होनी चाहिएं—मीठा हो और बहुत हो।"

आम बडे कलाकारो की तरह मिर्जा को बच्चो से बहुत प्यार था। अफसोस है कि उनके सात बच्चे हुए, लेकिन कोई न जिया। अपने भाजे आरिफ के मरने के बाद उनके दो लडको को अपने पास रखते थे और उनको बहुत चाहते थे। ये बच्चे अक्सर उनके कागज

इधर से उधर करते, कीचड भरे पैर लेकर उनके सफेद बिस्तर पर कूद पडते, तरह-तरह की जिदे करते, रूठते, मगर मिर्जा हमेशा उनको प्यार-चुमकार कर मना लेते। जब भी बाजार जाते तो बच्चो के लिए मिठाई और खिलौने जरूर लाते।

जैसी हसी-दिल्लगी तुमने मिर्जा के खतों मे देखी है वैसी ही रोजाना जिन्दगी मे भी थी। बात क्या करते थे, गोया मुह से फूल झडते थे।

एक बार, रोजों के जमाने मे, वह अपनी कोठरी में चौसर खेल रहे थे।

रोजो के महीने मे चौसर खेलना भी मजहबी लोग अच्छा नही समझते! और हा, यह भी मुसलमानो के यहां कहा जाता है कि शैतान चूकि इन्सान को बहला-कर उससे बुरे-बुरे काम करवाता है इसलिए रोजों भर अल्ला मिया शैतान को कैद कर देते है ताकि इस महीने मे आदमी कोई बुरा काम न करे।

तो गालिब के दोस्त आजरदा भी उसी कोठरी मे थे। यह बहुत मजहबी आदमी थे। गालिब को चौसर खेलते हुए देखा तो बोले .

"हमने सुना था रोजो मे शैतान कैद रहता है, मगर यह बात सच नही!"

गालिव ने मुस्कराकर जवाव दिया :

"नही वह वात तो सच है, अलवत्ता आपको यह मालूम होना चाहिए कि जिस कोठरी मे शैतान वन्द रहता है, यह वही है !"

एक दिन मिर्जा कुछ वीमार थे। पलग पर लेटे थे। मीर मेहदी आये और उनके पायते वैठकर उनके पांव दवाने लगे। मिर्जा ने कहा : "भाई तू सैयद है, मेरे पाव न दवा, मुझे गुनाह होगा।"

जानते हो क्यों ?

क्योकि सैयद लोग मुसलमानो मे ऐसे ही होते हैं जैसे हिन्दुओ मे व्राह्मण।

मीर मेहदी वोले · "अच्छा, आप पैर दवाने की मजदूरी दे दीजियेगा !"

मिर्जा ने कहा : "हा, इसमे कोई हर्ज नही।"

जव मीर मेहदी ने मजदूरी मागी तो जवाव मिला :

"तुमने मेरे पाव दावे मैने तुम्हारे पैसे दावे। हिसाव वरावर।"

एक रोज एक दोस्त मिलकर जा रहे थे। मिर्जा ने खुद मोमवत्ती उठाई और वडी मुश्किल मे जूतो तक

आये। वह इस जमाने में बीमार और कमजोर थे। दोस्त ने कहा .

"जनाब, आपने क्यों इस कदर तकलीफ की। मै खुद जूता देखकर पहन लेता।"

मिर्जा बोले :

"हुजूर, मै आपको जूता दिखाने के लिए शमा नही लाया हूँ, इसलिए लाया हूँ कि कही आप मेरा जूता न पहन जाये।"

गालिव ने मुस्कराकर जवाव दिया :

"नही वह वात तो सच है, अलवत्ता आपको यह मालूम होना चाहिए कि जिस कोठरी मे शैतान वन्द रहता है, यह वही है !"

एक दिन मिर्जा कुछ वीमार थे। पलंग पर लेटे थे। मीर मेहदी आये और उनके पांयते वैठकर उनके पांव दवाने लगे। मिर्जा ने कहा : "भाई तू सैयद है, मेरे पांव न दवा, मुझे गुनाह होगा।"

जानते हो क्यों ?

क्योकि सैयद लोग मुसलमानों मे ऐसे ही होते हैं जैसे हिन्दुओं मे ब्राह्मण।

मीर मेहदी वोले : "अच्छा, आप पैर दवाने की मजदूरी दे दीजियेगा !"

मिर्जा ने कहा : "हा, इसमे कोई हर्ज नही।"

जव मीर मेहदी ने मजदूरी मागी तो जवाव मिला :

"तुमने मेरे पांव दावे मैंने तुम्हारे पैसे दावे। हिसाव वरावर।"

एक रोज एक दोस्त मिलकर जा रहे थे। मिर्जा ने खुद मोमवत्ती उठाई और वड़ी मुश्किल से जूतों तक

आये। वह इस जमाने मे बीमार और कमजोर थे। दोस्त ने कहा :

"जनाब, आपने क्यो इस कदर तकलीफ की। मै खुद जूता देखकर पहन लेता।"

मिर्जा बोले :

"हुजूर, मै आपको जूता दिखाने के लिए शमा नही लाया हूँ, इसलिए लाया हूँ कि कही आप मेरा जूता न पहन जाये।"

हम वहां हैं जहां से हमको भी....

आखिर उम्र मे मिर्जा के जिस्म मे बहुत से फोड़े निकल आये थे। रोज नश्तर लगता। दवाये भरी जाती, देखनेवाले देख-देखकर काप जाते, मगर वह बड़ी खामोशी से, बड़े सब्र से, नश्तर लगवाते, मरहम-पट्टी करवाते।

हमने तुमसे उनके भांजे आरिफ के लडको का जिक्र किया है न। बड़े वाले की शादी हो गयी थी, उसकी बच्ची से, जो तीन, साढे तीन साल की थी बहुत मुहब्बत करते थे, और उसे प्यार से जीवन बेग कहते थे।

१५ फरवरी, सन १८६९ को दोपहर के वक्त पलंग

पर लेटे थे। वैसे अच्छे थे। मगर कमजोरी बहुत थी। नौकर ने पूछा "खाना लाऊ ?"

उठकर बोले "आज जीवन बेग के साथ खाना खायेंगे। उसे बुला लाओ !"

अन्दर से इत्तला आई कि बच्ची सो गयी है, जागे तो भेज देते है।

कहने लगे "अच्छा जब वह आये तो खाना लाना !" यह कहकर फिर लेट गये और लेटते ही बेहोश हो गये।

दिल्ली के सारे हकीम इकट्ठे हो गये। शहर में आग लगने का-सा गुल मच गया। जिस-जिस ने सुना दौड़ा आया। आठ पहर इसी दशा मे गुजरे, दूसरे दिन उर्दू शायरी का यह चिराग हमेशा के लिए बुझ गया।

कैसे मुबारक वह लोग है जिनकी जिन्दगी शमा की तरह होती है। खुद आसू बहाते है, घुल-घुल कर खत्म हो जाते है, पर दूसरो के लिए अधेरे मे रोशनी फैलाते है। इसीलिए तो ये वह लोग है जो कभी नही मरते, जीवन की रेत पर जिनके तलवो की छाप ऐसी होती है जो अपने पीछे आनेवालो को जिन्दगी की खूबसूरती, जिन्दगी का प्यार और जिन्दगी की शिकस्तगी का सबक देती है।

●